शोधा दिशा

ISSN 0975-735X

विश्वस्तरीय शोध-पत्रिका

केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा से अनुदान प्राप्त

UGC APPROVED CARE LISTED JOURNAL

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा मान्यता प्राप्त शोध पत्रिका

शोध अंक 61/3 जनवरी-मार्च 2023 400.00 रुपए

संपादकीय कार्यालय

हिंदी साहित्य निकेतन, 16 साहित्य विहार,
बिजनौर 246701 (उ॰प्र॰)
फोन : 0124-4076565, 09557746346
ई-मेल : shodhdisha@gmail.com
वैब साइट : www.hindisahityaniketan.com

क्षेत्रीय कार्यालय

हरियाणा

डॉ॰ मीना अग्रवाल
ए-402, पार्क व्यू सिटी-2 सोहना रोड,
गुड़गाँव (हरियाणा)

दिल्ली एन॰सी॰आर॰

डॉ॰ अनुभूति
सी-106, शिवकला अपार्टमेंट्स
बी 9/11, सेक्टर 62, नोएडा
फोन : 09958070700

(सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।)

संपादक
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल
07838090732

प्रबंध संपादक
डॉ॰ मीना अग्रवाल

संयुक्त संपादक
डॉ॰ शंकर क्षेम
प्रमोद सागर

उपसंपादक
डॉ॰ अशोककुमार
09557746346
डॉ॰ कनुप्रिया प्रचण्डिया

कला संपादक
गीतिका गोयल/ डॉ॰ अनुभूति

विधि परामर्शदाता
अनिलकुमार जैन, एडवोकेट

आर्थिक परामर्शदाता
ज्योतिकुमार अग्रवाल, सी॰ए॰

शुल्क
आजीवन (दस वर्ष): छह हजार रुपए
वार्षिक शुल्क : एक हजार रुपए
यह प्रति : चार सौ रुपए

प्रकाशित सामग्री से संपादकीय सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका से संबंधित सभी विवाद केवल बिजनौर स्थित न्यायालय के अधीन होंगे। शुल्क की राशि 'शोध दिशा' बिजनौर के नाम भेजें। (सन् 1989 से प्रकाशन-क्षेत्र में सक्रिय)

स्वत्वाधिकारी, मुद्रक, प्रकाशक डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल द्वारा श्री लक्ष्मी ऑफसैट प्रिंटर्स, बिजनौर 246701 से मुद्रित एवं 16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ॰प्र॰) से प्रकाशित। पंजीयन संख्या : UP HIN 2008/25034

संपादक : डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल

परामर्श-मंडल

डॉ॰ सुधा ओम ढींगरा, 101, Guymon Court, MorrisVille, NC-27560 USA
डॉ॰ सुरेशचंद्र शुक्ल, अध्यक्ष इंडो-नार्वेजियन सूचना एवं सांस्कृतिक मंच
प्रो॰ हरिमोहन, कुलपति, जे॰एस॰ विश्वविद्यालय, शिकोहाबाद (फिरोजाबाद) उ॰प्र॰
प्रो॰ खेमसिंह डहेरिया, कुलपति, अटलबिहारी वाजपेयी हिंदी विश्वविद्यालय, भोपाल (म॰प्र॰) 462038
डॉ॰ कमलकिशोर गोयनका, ए-98, अशोक विहार फेज-1, दिल्ली 110052
प्रो॰ अशोक चक्रधर, जे-116, सरिता विहार, नई दिल्ली
श्री अनिल शर्मा जोशी, उपाध्यक्ष, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा (उ॰प्र॰)
प्रो॰ पूरनचंद टंडन, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
डॉ॰ एस॰के॰ पवार, प्रोफेसर व अध्यक्ष, हिंदी विभाग, कर्नाटक विश्वविद्यालय, धारवाड़ 580003 (कर्नाटक)
प्रो॰ नंदकिशोर पांडेय, हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज॰)
प्रो॰ आदित्य प्रचंडिया, पूर्व आचार्य हिंदी विभाग, दयालबाग एजुकेशनल इंस्टीट्यूट, दयालबाग, आगरा
प्रो॰ बाबूराम, अध्यक्ष, हिंदी-विभाग, चौ॰ बंशीलाल विश्वविद्यालय, भिवानी (हरियाणा)
डॉ॰ राजेंद्र मिश्र, 14/4 स्नेहलता गंज, इंदौर 452003 (म॰प्र॰)
प्रो॰ हरिमोहन बुधौलिया, पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष हिंदी अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन
प्रो॰ आनंदप्रकाश त्रिपाठी, अध्यक्ष हिंदी अध्ययन मंडल, डॉ॰ हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर
प्रो॰ अर्जुन चव्हाण, प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर (महा॰)
डॉ॰ माया टाक, पूर्व प्रोफ़ेसर संगीत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज॰)
प्रो॰ अनिलकुमार जैन, पूर्व प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज॰)
प्रो॰ डॉ॰ सदानंद भौसले, अध्यक्ष हिंदी विभाग, सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय, पुणे (महा॰)
प्रो॰ शंभुनाथ तिवारी, हिंदी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (उ॰प्र॰)
डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण', (पूर्व प्राचार्य) 74/3 नया नेहरूनगर, रुड़की (उत्तराखंड)
डॉ॰ अवनिजेश अवस्थी, हिंदी विभाग, पी॰जी॰ डी॰ए॰वी॰ कालेज, नेहरू नगर, नई दिल्ली
डॉ॰ अरुणकुमार भगत, अध्यक्ष, मीडिया अध्ययन विभाग, महात्मा गांधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, मोतीहारी
प्रो॰ मंजुला राणा, अध्यक्ष हिंदी विभाग, हेमवती नंदन बहुगुणा केंद्रीय विश्वविद्यालय, श्रीनगर
प्रो॰ हनुमानप्रसाद शुक्ल, हिंदी विभाग, महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
प्रो॰ चंद्रकांत मिसाल, प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग, एस॰एन॰डी॰टी॰ महिला विद्यापीठ, पुणे (महा॰)
डॉ॰ मुकेश गर्ग, पूर्व एसोसिएट प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
प्रो॰ जितेंद्र वत्स, प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया (बिहार)
डॉ॰ माला मिश्रा, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, अदिति कालेज (दिल्ली विश्व॰), बवाना
डॉ॰ दिनेशकुमार चौबे, हिंदी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग (मेघालय)
डॉ॰ शहाबुद्दीन शेख़, प्राचार्य, लोकसेवा कला व विज्ञान महा॰, औरंगाबाद (महा॰)
डॉ॰ महेशचंद्र, पूर्व एसोसिएट प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग, मेरठ कॉलेज, मेरठ (उ॰प्र॰)
श्री राकेशकुमार दुबे, पत्रकारिता और जनसंचार विभाग, उड़ीसा केंद्रीय विश्वविद्यालय, कोरापुट (उड़ीसा)
डॉ॰ महेश दिवाकर, अध्यक्ष, अंतर्राष्ट्रीय हिंदी साहित्य एवं कला मंच, मुरादाबाद (उ॰प्र॰)
डॉ॰ प्रणव शर्मा, अध्यक्ष हिंदी विभाग, उपाधि महाविद्यालय, पीलीभीत 262001 उ॰प्र॰
डॉ॰ राखी उपाध्याय, प्रोफेसर हिंदी विभाग, डी॰ए॰वी॰ कॉलेज, देहरादून 248001 (उत्तराखंड)

महात्मा कबीर

कबीर नाम है—प्रेम का।

कबीर दर्शन है—एकत्व का, सद्भाव का।

कबीर विशेषण है—मस्त, फक्कड़ और निडर व्यक्ति का।

कबीर संगम है—दो संस्कृतियों का।

कबीर का संगम प्रयाग के संगम से ज़्यादा गहरा है। वहाँ क़ुरान और वेद ऐसे खो गए हैं कि रेखा भी नहीं छूटी।

कबीर एक मार्ग है—सहजता का। ऐसा मार्ग जो सीधा और साफ़ है।

टेढ़ी-मेढ़ी बात कबीर को पसंद नहीं। इसलिए उनके रास्ते का नाम है—सहज योग।

पंडित नहीं चल पाएगा इस मार्ग पर। निर्दोष चित्त, कोरा काग़ज़ जैसा मन ही चल पाएगा उस पर।

कबीर क्रांतिकारी हैं—क्रांति की जगमगाती प्रतिमा। जाति-पाँति के भेद-भावों से मुक्त एक सच्चा इंसान, मानवता के संकल्प से ओतप्रोत, ज्ञान की गंगा। ऐसी गंगा, जो अपनी संपूर्ण पावनता के साथ एक-एक मन को शीतल करती हुई निरंतर प्रवाहित रहती है।

कबीर का जन्म कहाँ हुआ? उनके जन्मदाता कौन थे? उनके गुरु का नाम क्या था? इस संबंध में प्राप्त ऐतिहासिक तथ्यों में एकरूपता नहीं है।

इतिहासकार, साहित्यिक विद्वान और कबीरपंथी भी एकमत नहीं।

कबीर के संबंध में निश्चित नहीं कि वह हिंदू थे या मुसलमान। हिंदुओं को विश्वास है : हिंदू थे, मुसलमानों का दावा है : मुसलमान थे।

जन्म की किंवदंतियाँ

कबीर के जन्म के संबंध में कई प्रकार की किंवदंतियाँ प्रसिद्ध हैं :

लगभग छह सौ वर्ष पूर्व की घटना है। नीरू अपनी पत्नी नीमा के साथ काशी की तरफ़ आ रहा था। उसी दिन उनका गौना हुआ था। नीरू काशी का जुलाहा था। रास्ते में लहरतारा तालाब पड़ता था। नीरू ने सोचा कि हाथ-पैर धो लिए जाएँ। तभी उसने किसी बालक के रोने की आवाज़ सुनी। आस-पास उसकी पत्नी के अतिरिक्त कोई भी न था। फिर आवाज़ कहाँ से आई! जिज्ञासा हुई। चारों तरफ़ देखा। आवाज़ एक झाड़ी की तरफ़ से आ रही थी। वह उसी ओर भागा। वहाँ जाकर देखा कि एक प्यारा-सा बच्चा वहाँ पड़ा था। बच्चा इतना छोटा, जैसे कुछ देर पहले ही उसका जन्म हुआ हो।

इतना प्यारा बच्चा नीरू जुलाहे ने कभी देखा नहीं था। उसकी आँखें ऐसी थीं जैसे मणियाँ हों। उसकी आँखों में ऐसी रोशनी थी कि नीरू की आँखें चौंध से भर उठीं। नीमा डरी कि कुछ झंझट होगा। लोग क्या कहेंगे। बदनामी भी होगी। किंतु जैसे ही उसने बच्चे को देखा, उसका दिल भी डोल गया।

अंत में उन लोगों ने लोक-लाज की परवाह नहीं की और वे बच्चे को अपने साथ ले आए। काशी में जो मुहल्ला कबीर चौरा के रूप में आज प्रसिद्ध है, उसी में संभवतः नीरू का घर था।

वे घर पहुँचे। अपने रिवाज के अनुसार, बच्चे का नामकरण करने के लिए उन्होंने काज़ी को बुलाया। उसने क़ुरान खोला। कहते हैं कि उसमें हर जगह कबीर-कुब्रा, अकबर आदि शब्द मिले।

अरबी में ये शब्द महान् परमात्मा के लिए आते हैं। काज़ी हैरान था। साधारण जुलाहे के बच्चे को किस तरह परमात्मा का नाम दिया जाए? अपना शक मिटाने के लिए उसने कई बार क़ुरान देखा। उसे हर बार वही शब्द मिले। यह समाचार पाकर कई काज़ी इकट्ठे हो गए। आख़िर उन्होंने नीरू को सलाह दी–'इस बच्चे का क़त्ल कर दे, नहीं तो इसके कारण कोई बड़ी आफ़त आने वाली है।'

नीरू-नीमा इतना क्रूरकर्म न कर सके और इस प्रकार बच्चे का नाम कबीर पड़ गया।

यही बच्चा, जिसके असली माँ-बाप का पता दुनिया को आज तक नहीं हुआ, आगे चलकर भारत का महान् संत कबीर हुआ।

कबीर के जन्म को लेकर एक किंवदंती हिंदू-समाज में भी प्रचलित है। एक दिन एक ब्राह्मण अपनी विधवा कन्या के साथ स्वामी रामानंद के दर्शन के लिए गया। पिता के साथ ही कन्या ने भी रामानंद के चरण-स्पर्श किए।

रामानंद अपनी मस्ती में थे। उन्हें ध्यान ही नहीं रहा कि चरण कौन छू रहा है? अचानक उनके मुँह से निकला–'पुत्रवती भव!'

आशीर्वाद दे दिया कि 'पुत्रवती होओ।'

महात्मा जी का आशीर्वाद असत्य नहीं हो सकता था। कुछ समय बाद उसके गर्भ से एक पुत्र ने जन्म लिया। लोकलाज स्वाभाविक थी। ब्राह्मणी ने मन को कड़ा किया और बच्चे को लहरतारा तालाब के किनारे छोड़ दिया। संभवतः इस बालक को ही नीरू और नीमा ने लहरतारा के किनारे से पाया था।

ऐसा लगता है कि कबीर हिंदू-घर में पैदा हुए और मुसलमान घर में पले। इसमें एक अपूर्व संगम हुआ, एक अपूर्व समन्वय हुआ।

कबीर में हिंदू और मुसलमान संस्कृतियाँ जिस प्रकार मेल खा गईं, इतना तालमेल तो गंगा और यमुना में भी प्रयाग में नहीं मिलेगा, दोनों का जल अलग-अलग मालूम होता है। कबीर में जल तनिक भी अलग-अलग मालूम नहीं होता।

तीसरी कहानी और अधिक रोचक है, एक पुराणपंथी कहानी की तरह। इसके अनुसार, कबीर साहब शुकदेव जी के अवतार थे।

कहा जाता है कि महादेव की आज्ञा से शुकदेव जी लोककल्याण के लिए पृथ्वी पर आए।

पूर्वजन्म में वे बारह वर्ष तक गर्भवास का दुख भोग चुके थे। इसलिए इस बार गर्भवास से बचने के लिए उन्होंने अपने को एक सीपी में बंद कर लिया और उसे गंगा के किनारे बहाव में छोड़ दिया। यही सीपी बहते-बहते लहरतारा तालाब में पहुँच गई और दैवयोग से वहीं एक कमल के पत्ते पर खुल गई। इसमें से एक सुंदर बालक प्रकट हुआ। यही बालक आगे चलकर कबीर के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

कबीर के जन्म के संबंध में जितनी कथाएँ ज्ञात हैं, उन सबको मिलाकर यही कहा जा सकता है कि इन महात्मा को जन्म देने वालों का पता किसी को नहीं है।

कबीर का जन्म किस सन् में, किस तिथि को हुआ, इसे भी ठीक- ठीक बता पाना बहुत कठिन है।

उनकी जन्मतिथि के संबंध में एक छंद बहुत समय से प्रचलित है :

चौदह सौ पचपन साल गए, चंद्रवार इक ठाठ ठए
जेठी सुदी बरसायत को, पूरनमासी प्रकट भए।

अर्थात् विक्रम के 1455 साल व्यतीत होने पर, सोमवार को जेठ की पूनो, वटसावित्री के पर्व पर कबीर साहब प्रकट हुए थे। वटसावित्री या बरसायत के दिन कबीरपंथी अब भी कबीर साहब का जन्मदिन मनाया करते हैं।

कुछ विद्वानों ने गणना करके पता लगाया कि सोमवार को जेठ पूनो संवत् 1455 में नहीं बल्कि 1456 में पड़नी चाहिए। इसलिए 1455 साल गए का अर्थ यह भी हो सकता है कि 1455 वाँ संवत् बीत जाने पर अर्थात सं॰ 1456 में कबीर का जन्म हुआ होगा।

कबीर के जन्मस्थान के संबंध में भी तीन मत हैं : मगहर, काशी और आजमगढ़ में बेलहरा गाँव।

मगहर के पक्ष में यह तर्क दिया जाता है कि कबीर ने अपनी रचना में वहाँ का उल्लेख किया है : पहिले दरसन मगहर पाई, पुनि कासी बसे आई अर्थात् काशी में रहने से पहले उन्होंने मगहर देखा। मगहर आजकल की वाराणसी के निकट ही है और वहाँ कबीर का मकबरा भी है।

कबीर का अधिकांश जीवन काशी में व्यतीत हुआ। वे काशी के जुलाहे के रूप में ही जाने जाते हैं। कई कबीरपंथियों का भी यही विश्वास है कि कबीर का जन्म काशी में हुआ, किंतु किसी प्रमाण के अभाव में निश्चयात्मकता अवश्य भंग होती है।

बहुत से लोग आज़मगढ़ ज़िले के बेलहरा गाँव को कबीर साहब का जन्मस्थान मानते हैं। वे कहते हैं कि बेलहरा ही बदलते-बदलते लहरतारा हो गया।

फिर भी पता लगाने पर न तो बेलहारा गाँव का ठीक पता चल पाता है और न यही मालूम हो पाता है कि बेलहरा का लहरतारा कैसे बन गया और यह आज़मगढ़ ज़िले से काशी के पास कैसे आ गया। आज़मगढ़ ज़िले में कबीर, उनके पंथ या अनुयायियों का कोई स्मारक नहीं है।

मसि कागद छूयो नहीं

कबीर बड़े होने लगे। वे अपनी अवस्था के बालकों से एकदम भिन्न थे। उन्हें खेल में कोई रुचि नहीं थी। मदरसे भेजने लायक साधन माता-पिता के पास नहीं थे। जिसे हर दिन भोजन के लिए ही चिंता रहती हो, उस पिता के मन में कबीर को पढ़ाने का विचार भी न उठा होगा।

यही कारण है कि वे किताबी-विद्या प्राप्त न कर सके। उन्होंने स्वीकार किया : 'मसि कागद छूयो नहीं, कलम गही नहिं हाथ।'

किंतु किताबी विद्या ही सब-कुछ नहीं होती। जिसमें आभा नहीं, भावुकता नहीं, कार्य करने की शक्ति नहीं, वह तो पुस्तक पढ़कर भी मूर्ख बना रहेगा।

सब जानते हैं कबीर ज्ञान के भंडार थे, प्रतिभा के सागर थे, भावुकता के स्रोत थे। वे बचपन से ही रामभक्ति का अमृतरस छककर पी रहे थे।

जुलाहा परिवार में पलने वाले बालक पर मुसलमानी रहन-सहन, आचार-व्यवहार का प्रभाव पड़ना चाहिए था। किंतु वे हिंदुओं की भाँति कंठी-माला धारण करते, तिलक लगाते और राम-नाम का जाप करते।

स्वामी रामानंद का शिष्यत्व

कबीर ने अनुभव किया कि ज्ञान की परिपक्वता के लिए गुरु आवश्यक है, परंतु गुरु का महान् पद किसे दिया जाए? कौन गुरुमंत्र देगा!

काशी में उन दिनों सबसे प्रसिद्ध वैष्णव आचार्य स्वामी रामानंद थे। कबीर के मन में उन्हीं से दीक्षा लेने की इच्छा जाग्रत हुई।

लेकिन इसमें एक भारी बाधा थी। वैष्णव आचार्य एक जुलाहे को दीक्षा किस प्रकार दे सकता था? उस बाधा को दूर करने के लिए कबीर ने एक उपाय सोचा।

स्वामीजी प्रतिदिन धुँधलके में ही अपने सेवकों के साथ गंगास्नान के लिए जाया करते थे। कबीर प्रात:काल चार बजे से पहले ही गंगाजी की सीढ़ियों पर जाकर लेट गए। स्वामी रामानंद गंगा में स्नान करके सीढ़ियाँ चढ़ रहे थे। तभी उनका पैर किसी से टकराया। वे क्षण-भर ठिठके और 'राम-राम' कहकर अपना पैर हटा लिया।

कबीर ने इसी राम-नाम को गुरुमंत्र स्वीकार किया। अब वे गुरुहीन नहीं थे। उन्होंने उस समय के प्रसिद्ध आचार्य को अपना गुरु बनाया था। वे महान् गुरु के महान् शिष्य थे।

लोगों ने सुना कि स्वामीजी ने एक जुलाहे कबीर को अपना शिष्य बना लिया है। वे ईर्ष्या से जल उठे।

लोगों ने जाकर रामानंद जी से पूछा, 'महाराज, आपने जुलाहे को भी अपना शिष्य बनाया है।'

स्वामीजी ने उत्तर दिया, 'भाई, हमने तो उसे शिष्य बनाया नहीं है।'

उपस्थित व्यक्तियों ने कहा, 'महाराज, वह तो शहर-भर में यही कहता फिरता है कि मैं स्वामी रामानंद जी का शिष्य हूँ।'

स्वामीजी आश्चर्यचकित थे, 'यह कैसे हो सकता है? मैंने तो किसी जुलाहे कबीर को दीक्षा नहीं दी।'

दूसरे दिन स्वामीजी ने कबीर साहब को बुलाया और पूछा, 'क्यों भाई! मैंने तुम्हें शिष्य कब बनाया? कब मंत्रोपदेश दिया?'

कबीर ने विनम्रता के साथ उत्तर दिया, 'गुरुदेव, अन्य लोगों को तो आप कान में ही मंत्रोपदेश देते होंगे। मुझे तो आपने मस्तक पर पैर रखकर मंत्रोपदेश दिया था।'

इतना कहकर कबीर ने गंगाघाट का सारा वृतांत कह सुनाया।

शिष्य की अगाध निष्ठा और अविरल भक्ति देखकर गुरु गद्‌गद् हो उठे।

शिष्य ने अपना शिष्यत्व प्रकट कर दिया था।

गुरु का स्नेह छलक उठा। उन्होंने अपने प्रिय शिष्य को हृदय से लगा लिया।

कबीर के काल में भारत पर मुसलमानों का राज्य था। हिंदुओं के ऊपर तरह-तरह के अत्याचार होते थे। ऐसी दशा में दोनों जातियों में पारस्परिक प्रेम के स्थान पर घृणा ही अधिक फैली हुई थी।

स्वाभाविक था कि मुसलमान परिवार के बालक को राम-राम कहते देखकर बिरादरी वाले

उलझन में पड़ते। मुसलमान उनकी हरकतों को देखकर खीज से भर उठते। वे कहते : यह लड़का बड़ा काफ़िर होगा।'

कबीर इसका जवाब इस तरह देते : काफ़िर वह है, जो पराया धन लूटता है, धोखे से दुनिया को ठगता है, बेकसूर जीवों का वध करता है।

एक पद में उन्होंने काज़ी से कहा है : तुम कुरान का बाहरी ढकोसला छोड़कर राम का भजन करो, नहीं तो भारी जुल्म करोगे। मैंने तो राम का ही आसरा पकड़ा है, भले ही लोग मुझे समझाते-समझाते हार जाएँ।

कबीर के व्यवहार से नीरू-नीमा भी परेशान थे। यह कहाँ का घर- घालन पैदा हुआ है? अपनी बिरादरी के रीति-रिवाज छोड़कर हिंदुओं की तरह आचरण करता है। किंतु कबीर थे कि उनकी मस्ती बढ़ती ही जाती थी। इस मस्ती में वे कभी-कभी अपना कताई-बुनाई का धंधा भी भूल जाते थे। नीमा के लिए यह उलझन भरी बात थी, 'या खुदा! यह लड़का कैसे जिएगा।'
कबीर माता को समझाते थे, 'माँ, जब मैं नली के छेद में तागा डालने लगता हूँ तो मेरा प्यारा नाम मुझे भूल जाता है।

क्या करूँ मैं! पर तू चिंता न कर। वह राम ही तीनों लोकों को सँभालता है। वही हमारी ज़रूरतें भी पूरी करेगा।

कबीर परम वैरागी थे। सांसारिक माया-मोह से उन्हें कोई वास्ता न था। धन-संपत्ति उनके लिए व्यर्थ थे। फिर भी वे गृहस्थ-संन्यासी के रूप में जीवन-निर्वाह करते रहे। व्यवसाय व कार्य से जुलाहे का जीवन। यही उनकी जीविका का साधन था। वे कपड़ा बुनकर उसे बाज़ार में बेचने जाते और उसमें जो भी लाभ होता, उससे अपना और अपने परिवार का जीवन-निर्वाह किया करते थे। उसी से भक्तों की भी सेवा करते।

एक दिन एक नई घटना घटी।

एक ग़रीब ब्राह्मण बाज़ार में ही कबीर के पास पहुँचा। उसकी स्थिति उसकी दरिद्रता को बताने के लिए पर्याप्त थी। अपना तन ढकने के लिए उनसे दीनतापूर्वक कपड़ा माँगा। कबीर ने उसकी वाणी में छिपी दीनता को समझा। वे बोले : मैं तुम्हें आधा थान दे सकता हूँ। आज आधे से ही परिवार का ख़र्चा चला लूँगा।

किंतु आधे थान से ब्राह्मण को संतोष नहीं हुआ। उसने पूरा थान दे देने की विनती की। कबीर को दया आ गई। उस दिन बनाया गया सारा कपड़ा उन्होंने दान कर दिया। किंतु उन्हें चिंता हुई कि घरवालों को क्या खिलाएँगे? शर्म के कारण उन्हें घर जाने का साहस न हुआ। वे आस-पास ही कहीं छिपे बैठे रहे। सारा दिन बीत गया। घर के लोग भूख के कारण व्याकुल होने लगे। उसी समय एक अचंभा हुआ।

एक आदमी बैल पर खाने-पीने की चीज़ें लादकर लाया और ज़बरदस्ती कबीर के घर रख गया।

नीमा आश्चर्यचकित थी।

उसे अपने बेटे के स्वभाव का पता था। कोई लाख रुपए भी दे, लेकिन वह अपने परिश्रम के अलावा एक पैसा नहीं लेता था।

नीमा ने पूछा, 'ये सामान कहाँ से लाए?'

उस आदमी ने बताया, 'विश्वनाथ जी का दर्शन करने एक राजा आया हुआ है। तुम्हारे बेटे

पर प्रसन्न होकर उसने बहुत-सा धन दिया। तुम्हारे बेटे ने तो एकदम इंकार ही कर दिया।

तब राजा ने बड़ी विनती करके खाने-पीने का यह सामान भिजवाया है। आप इसे स्वीकार कीजिए। कुछ देर बाद आपका बेटा भी आता होगा।'

इतना कहकर वह आदमी अपना भेद बताए बिना चला गया। नीमा को उसकी बात पर विश्वास हो गया। उसने सोचा–संभव है, यही बात सच हो। लोग कबीर को खोजने निकले और उन्हें यह ख़बर दी। वे तो आज सारा कपड़ा दान में दे चुके थे। घरवालों को खिलाने के लिए उनके पास कुछ न था। वे घर पहुँचे। नीमा ने सारा हाल कह सुनाया।

कबीर को मन-ही-मन विश्वास हो गया कि दयालु परमात्मा के अतिरिक्त दूसरा कौन ऐसा कर सकता है?

इस घटना से उनके आत्मबल में और अधिक वृद्धि हुई। अब तो वे ताना-बाना पूरी तरह भूल गए। हरिभक्ति ही उनका एकमात्र आधार बन गई।

ब्राह्मणों को भोज

कबीर की यशगाथा अपने पंख फैला रही थी। जनसामान्य में उनके प्रति श्रद्धा और आदर का भाव बढ़ रहा था। जनता उनके दर्शनों के लिए उत्सुक रहती थी।

पूरी काशी कबीरमय हो रही थी। कबीर राममय हो रहे थे।

एक जुलाहे का इतना आदर और सम्मान हो, यह बात न तो ब्राह्मणों को अच्छी लगी और न शहर के काज़ी को।

वे ईर्ष्या से जलने लगे। सभी के मन में एक ही बात थी। कबीर को किस प्रकार नीचा दिखाया जाए? ब्राह्मणों की एक सभा हुई। सभा में निर्णय लिया गया कि कबीर को काशी से बाहर निकाल दिया जाए। इसके बाद निर्णय की घोषणा कर दी गई। इस निर्णय से भक्तजन दुखी थे, किंतु उनकी बात कौन सुनता! तमाशा देखने के लिए नगरी की भीड़ उमड़ पड़ी। कुछ ब्राह्मण कबीर के पास पहुँचे और क्रोध प्रकट करने लगे। कबीर ने सबको आदर से बैठाया। विनम्रता के साथ पूछा, 'पधारने की कृपा किसलिए की?

ब्राह्मण बोले, 'तुम्हें आज ही काशी नगरी को छोड़ना होगा।'

'मेरा क्या अपराध है? आपके क्रोध का कारण क्या है?' कबीर ने पूछा।

'हम सबका यही निर्णय है।' ब्राह्मण-समुदाय ने कहा।

कबीर बोले, 'न तो मैंने किसी का कुछ चुराया है और न किसी की बेइज़्ज़ती की है। राम का नाम जपता हूँ। मेरा अपराध बताएँ।'

ब्राह्मण क्रोधपूर्वक कहने लगे, 'तुमने भोज दिया। शूद्रों को भोजन कराया। हम लोगों को पूछा तक नहीं। इसका प्रायश्चित यही है कि या तो हमारे भोज का प्रबंध करो अथवा इस नगरी को छोड़कर चले जाओ।'

यह तो घोर अन्याय था। कबीर के घर तो अन्न का दाना भी नहीं था। उन्होंने तो सब-कुछ ग़रीबों में बाँट दिया था। अब वे इतने लोगों के लिए अन्न की व्यवस्था कहाँ से करें? ब्राह्मणों को भूखा भेजना भी अधर्म था।

उन्होंने व्यवस्था करने का आश्वासन दिया और वहाँ से चले आए। ब्राह्मण कबीर के घर के बाहर एकत्र थे।

'देखा जाएगा, कभी तो लौटकर आएगा ही। बहुत बड़ा भक्त बनता है। आज असलियत का पता चलेगा।' ब्राह्मणों ने विचार किया।

तभी किसी ने देखा, 'एक व्यक्ति कई मज़दूरों के साथ उसी ओर आ रहा था। सबके सिर पर सामान लदा था।

मैदा, चावल, शक्कर की बोरियाँ घर के आगे उतारकर रख दी गईं। ब्राह्मणों में खलबली मच गई। सबको ढाई-ढाई सेर सामग्री देकर विदा कर दिया गया। प्रत्येक के मुँह से एक ही स्वर फूट रहा था, 'धन्य-धन्य।'

तभी एक ब्राह्मण कबीर को खोजता हुआ उनके पास पहुँचा। कबीर तो अपना मुँह छिपाए हुए बैठे थे।

ब्राह्मण बोला, 'तुम यहाँ बैठे हो। वहाँ सभी ब्राह्मणों और संन्यासियों को भोजन-सामग्री बाँटी जा रही है।'

'कहाँ भाई! कुछ तो बताओ।' कबीर ने आश्चर्य के साथ पूछा।

'अब बात न बनाओ, कबीर साहब। सामान तो घर भिजवा दिया और खुद यहाँ बैठे हो।' ब्राह्मण ने उत्तर दिया, 'देखते नहीं, मैं स्वयं आपके घर से यह गठरी बाँधकर ला रहा हूँ।'

कबीर चुपचाप सुनते रहे। वह राम का चमत्कार प्रत्यक्ष देख रहे थे। वह मन-ही-मन बोले, 'मेरा कर्त्ता महान् है। उसके बिना यह आदर कौन दे सकता है?' सभी ब्राह्मण कबीर के सम्मुख नतमस्तक हो गए थे।

सिकंदर से शिकायत

काज़ी था कि ईर्ष्या से जला जा रहा था। वह ऐसे अवसर की खोज में था कि कब कबीर से बदला लिया जाए! आख़िर वह दिन भी आ पहुँचा।

उन्हीं दिनों काशी में सिकंदर लोदी का आगमन हुआ।

लोदी वंश का यह सुलतान दिल्ली की गद्‌दी पर विराजमान था।

सिकंदर लोदी अत्याचारी तो था, किंतु ख़ुदा और धर्म से डरने वाला शासक था। बनारस का काज़ी और वहाँ के मुल्ला उसके कान भरने लगे। उन्होंने सुलतान को समझाया—'कबीर किसी को कुछ नहीं समझता। सभी को गालियाँ देता है। बड़ा ही घमंडी है। इस जुलाहे ने बड़ा ही तूफ़ान खड़ा कर रखा है। उसने मुसलमानों के रीति-रिवाज छोड़ दिए हैं। वह तो ख़ुद ख़ुदा बनने का दावा करता है।'

ब्राह्मणों ने भी इसे उचित अवसर समझा। वे भी शिकायत लेकर पहुँच गए। उन्होंने कहा, 'वह तीर्थ और वेद की निंदा करता है। व्रत-उपवास को बेकार की बातें बताता है। हिंदू और तुर्क दोनों से अलग अपनी रीति चलाता है। आप ही हमारे माता-पिता हैं। आप ही हमारी रक्षा करें।'

सिकंदर लोदी ने सोचा—यह अजीब फ़क़ीर है, जो न तो किसी मस्जिद में जाता है और न किसी मंदिर में जाने को अच्छा समझता है।

बादशाह ने तुरंत दो सिपाहियों को भेजा और कबीर को दरबार में हाज़िर होने का हुक्म दिया।

कबीर आए। वह आराम से बादशाह के सामने खड़े हो गए। उनके चेहरे पर किसी प्रकार का डर नहीं था। उन्होंने यह भी नहीं पूछा कि क्या बात है? बस खड़े रहे।

काज़ी ने कहा, 'बादशाह को सलाम कीजिए।' किंतु कबीर ने ऐसा भी नहीं किया। इस पर बादशाह ग़ुस्से से भर उठा।

सुलतान के ग़ुस्से को भाँपकर काज़ी ने कहा–'तू काफ़िर है। तू हमारे धर्म के ख़िलाफ़ प्रचार करता है। तू मुसलमान और हिंदू दोनों को गालियाँ देता है। तेरे चेले भी यही सब करते हैं। इन शिकायतों की सफ़ाई में तुझे कुछ कहना है।'

कबीर ने संक्षिप्त सा उत्तर दिया–'नहीं।'

दरबार में सन्नाटा छा गया। सभी की आँखें सुलतान की ओर थीं। कबीर के विरोधी मन-ही-मन ख़ुश थे कि अब तो इसे मौत की सजा मिलेगी। सिकंदर लोदी को भी कम आश्चर्य नहीं था। उसने ऐसे फ़क़ीर को कभी न देखा था। उसने पूछा, 'तुम अपना जुर्म मानते हो?'

'अगर किसी के दुर्गुण को दुर्गुण कहना बुराई है तो मैं ऐसा जुर्म करता हूँ और बार-बार करता रहूँगा। हिंदू और मुसलमान दोनों धर्मों को मानने वालों में ऐसी बहुत-सी बुराइयाँ हैं, जिन्हें दूर करना ज़रूरी है। मैं यदि उनकी चर्चा करता हूँ तो मुझ पर दोष लगाया जाता है।' कबीर ने निर्भीकता के साथ कहा।

अपनी बात को साफ़ तौर पर बताओ। बादशाह ने हुक्म-भरे लहज़े में कहा। इस पर कबीर ने कहा–

यह सब झूठी बंदगी, बिरथा पंच निबाज।
साँचै मारै झूठि पढ़ि, काजी करै अकाज।

कबीर ने केवल काज़ी को ही नहीं, मुल्ला को भी खरी-खरी सुनाते हुए कहा–

काजी मुल्ला भरमिया, चल्या दुनी के साथ।
दिल थै दीन बिसारिया, करद लई जब हाथ।

कबीर की वाणी में स्पष्टता थी। जो कुछ भी मन में था, वह सब- कुछ प्रकट था। कुछ भी तो नहीं छिपाया गया था। अब इसे स्पष्टवादिता कहें अथवा दोष। कबीर पर किसी प्रकार का बोझ नहीं था। उन्होंने बताया, 'मुझे हिंदुओं और तुर्कों से कुछ लेना-देना नहीं है। गुरु के प्रताप से राम की भक्ति करता हूँ और उसी के गुण गाता हूँ। राम के भरोसे रहकर मैं राजा या रंक सबको एक बराबर मानता हूँ।'

काज़ी ने कबीर की बात सुनी और फ़ैसला दिया, 'कबीर ने इस्लाम की निंदा की है। वह काफ़िर है। उसकी माला छीन लो, तिलक मिटा दो। इसकी सजा है कि इसे पत्थरों से पीट-पीटकर मार दिया जाए।'

कबीर ने कहा, 'काफ़िर मैं नहीं, तुम हो। कौनसी पुस्तक में गोकशी करने, मुर्ग़ा और बकरा काटने की आज्ञा दी गई है?'

यह सुनते ही बादशाह क्रोध से पागल हो उठा। उसने आज्ञा दी, 'इस फ़क़ीर के हाथ-पैर बाँधकर इसे गंगा में फेंक दिया जाए।'

जल्लादों ने बादशाह के हुक्म का पालन किया, किंतु पानी में डालते ही कबीर की ज़ंजीरें टूट गईं। वे जल के ऊपर तैरने लगे। लोगों ने कहा, 'लगता है, यह कोई जादू-टोना जानता है।'

दूसरी बार उनके हाथ-पैर बाँधकर एक घर के अंदर डाल दिया गया। घर के चारों ओर आग लगा दी गई। मकान जलकर राख हो गया। राख तक हवा में उड़ गई। किंतु कबीर का बाल भी बाँका न हुआ।

सिकंदर लोदी का क्रोध भी अब तक शांत नहीं हुआ था। कबीर की मौत अहंकार को शांत करने के लिए आवश्यक थी।

उसने आज्ञा दी कि 'कबीर के हाथ-पैर बाँधकर उसे मदमस्त हाथी के सामने डाल दिया जाए।'

आज्ञा का पालन किया गया।

हाथी भी ऐसा कि अपनी छाया को भी जीव समझकर कुचलता रहता था। ऐसा बिगड़ैल हाथी कबीर के सामने छोड़ दिया गया। लेकिन लोग अचंभे से भरे रह गए।

हाथी ने कबीर की ओर देखा और देर तक उन्हें निहारता रहा। ऐसा लग रहा था, जैसे उसके सामने कोई शेर खड़ा हो।

आख़िर वह चिंघाड़ता हुआ वहाँ से भाग खड़ा हुआ।

कबीर के पद इस बात का प्रमाण हैं कि उन पर इस प्रकार के अत्याचार अवश्य किए गए होंगे और ईश्वर की कृपा ने उनकी रक्षा की होगी।

गंगा में फेंके जाने के प्रमाणस्वरूप निम्नलिखित पद प्रस्तुत किया जाता है–

मन न डिगै तनु काहे को डराइ, चरन-कमल चितु रह्यौ समाई
गंग गुसाइनि गरि गंभीर, जंजीर बाँधि करि खरे कबीर
गंगा की लहर मेरी टुटि ज़ंजीर, मृगछाला पर बैठे कबीर
कहै कबीर कोई संग न साथ, जल-थल में राखै रघुनाथ।

हाथी के सामने फेंके जाने की घटना के संबंध में कबीर की निम्नलिखित पंक्तियाँ स्वयं प्रमाण हैं–

आहि मेरे ठाकुर तुम्हरा जोर, काजी बाकिबो हस्ती तोर
भुजा बाँधि मिला करि डार्‌यौ, हस्ती कोपि मूँड महि मार्‌यौ
भाग्यौ हस्ती चीसा मारी, या मूरति की हौं बलिहारी।

समाज-सुधार

दूसरे फ़क़ीरों और संन्यासियों की तुलना में कबीर का रास्ता बिलकुल अलग था। वे केवल अध्यात्म और मोक्ष की साधना में नहीं लगे रहे, समाज में फैली बुराइयों और विडंबनाओं को दूर करने का संकल्प भी उन्होंने लिया। ऐसा करने में कबीर अनेक स्थानों पर कठोर भी हो गए हैं।

उनका विचार था कि समाज की बुराइयों को दूर करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को सुधारना होगा।

कबीर का युग पराधीनता का युग था। वर्ग-विद्वेष समाज के रक्त में मिल चुका था। अवर्ण-सवर्ण की खाई बढ़ती जा रही थी। मंदिरों में पूजा, भक्ति, अर्चन और ज्ञानोपार्जन शूद्रों के लिए वर्जित कर दिया गया था।

कबीर की आत्मा इस पारस्परिक दुर्व्यवहार से आहत हो गई। अस्पृश्यता के इस कलंक को मिटाने के लिए उन्होंने घोर संघर्ष किया।

उन्होंने घोषणा की कि जन्म से ही कोई शूद्र अथवा श्रेष्ठ नहीं हो सकता। यह सब तो मनुष्य के स्वार्थ की करामात है–

हम तुम्ह माँहि एके लौहू, एक पाँनि जीवन है मौहू

एकहि जननी जन्याँ संसारा, कौन ग्यान से भये निनारा।

सबके अंदर एक ही रंग का रक्त प्रवाहित है। सबमें समान प्राण व्याप्त हैं। सबको एक प्रकृति ने पैदा किया है। फिर कोई अलग-अलग, ऊँचा-नीचा कैसे हो सकता है?

इसीलिए कबीर ने कहा है कि हमें पारस्परिक भेदभाव का त्याग करना होगा। सबका कर्त्तव्य है कि वे मिल-जुलकर रहें। इसी में सबका कल्याण है–

सर्वभूत एके करि जान्याँ, चूक वाद-विवारा
कहि कबीर में पूरा पाया, भये राम परसारा

कबीर का मन ऊँच-नीच की भावना से दुखी था। इसके अतिरिक्त कबीर के हृदय में एक पीड़ा और भी थी।

सांप्रदायिक वैमनस्य ने समाज को क्षत-विक्षत कर दिया था।

हिंदू और मुसलमान दो ऐसे संप्रदाय थे, जिनमें हमेशा तनाव बना रहता था। कबीर ने सांप्रदायिक एकता स्थापित करने का अथक् प्रयास किया।

उन्होंने समझाया : मंदिर, मूर्ति और मस्ज़िद को लेकर झगड़ा करना व्यर्थ है। ईश्वर तो एक ही है, चाहे उसे किसी भी नाम से पुकारा जाए। उसे किसी एक स्थान में खोजना मोटी बुद्धि का काम है :

जौर खुदाय मसीति बसत है और मुलिक किस केरा
तीरथ मूरति राम निवासा दुहु मैं हिनहूँ न हेरा।

तुम परमात्मा के हो सकते हो, यह बात तो समझ में आती है, लेकिन तुम उल्टा काम करते हो, तुम परमात्मा को अपना बना लेते हो। परमात्मा के हो जाओ, क्योंकि तुम बूँद हो, वह सागर है। समर्पण कर दो अपना। लीन हो जाओ विराट् में। यह बात समझ में आती है। लेकिन लीन तो कोई नहीं होता। लोग उलटे परमात्मा पर ही क़ब्ज़ा कर लेते हैं। बूँद सागर पर क़ब्ज़ा कर रही है। परिणामत: 'हिंदू कहत है राम हमारा, मुसलमान रहमाना।'

परमात्मा तो तुम्हारा रक्षक है, किंतु तुम हो कि परमात्मा की रक्षा की दावेदारी कर रहे हो, कहीं मुसलमान आकर मंदिर की मूर्ति न तोड़ दे, कहीं मस्ज़िद में कोई हिंदू आग न लगा दे, कहीं क़ुरान का कोई अपमान न कर दे, कहीं गीता का कोई विरोध न कर दे।

तुम परमात्मा की रक्षा में जुट जाते हो। इस प्रकार जैसे तुम्हारा परमात्मा बड़ा असहाय है। जगह-जगह कुटेगा, पिटेगा, लोग आएँगे, मारेंगे, काटेंगे, तोड़ेंगे। तुम ही उसे बचा सकते हो।

हिंदुओं और मुसलमानों की इस अज्ञानता पर कबीर ने ढार-ढार आँसू बहाए हैं। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है कि न तो हिंदू के हृदय में दया है और न मुसलमान के मन में मेहर है। दोनों की करुणा समाप्त हो गई है। दोनों का प्रेम चुक गया है, किंतु खेद तो यह है कि दोनों ही ख़ुद को समझदार और सयाना समझते हैं–

साधो देखो जग बौराना।
साँची कहौ तो मारन धावै, झूठे जग पतियाना।
हिंदू कहत है राम हमारा, मुसलमान रहमाना।
आपस में दोउ लड़े मरतु हैं, मरम कोई नहिं जाना।
बहुत मिले मोहि नेमी धरमी, प्रात करै असनाना।

आतम छाड़ि पखाने पूजैं तिनका थोथा ग्याना।
आसन मारि डिंभ धरि बैठे, मन में बहुत गुमाना।
पीपर पाथर पूजै लागे, तीरथ बर्त भुलाना।
माला पहिरे टोपी पहिरे, छाप तिलक अनुमाना।
साखी सबदै गावत भूलै आतम खबर न जाना।
घर-घर मंत्र जो देत फिरत है माया के अभिमाना।
गुरुवा सहित सिष्य सब बूड़े, अंतकाल पछताना।
बहुतक देखे पीर औलिया, पढ़ैं किताब कुराना।
करै मुरीद कबर बतलावै, उनहुँ खुदा न जाना।
हिंदू की दया मेहर तुरकन की, दोनों घर से भागी।
वह करै जिबह वाँ झटका मारै, आग दोउ घर लागी।
या विधि हँसी चलत है हमको, आप कहावै सयाना।
कहै कबीर सुनो भई साधो, इनमें कौन दिवाना।

कबीर ने साफ़-साफ़ कहा– सांप्रदायिक व्यक्ति धर्म को नहीं जानता। वह कभी जान ही नहीं सकता। उस परमात्मा की खोज कहीं और करने की आवश्यकता नहीं। वह तो तुम्हारे अंदर विद्यमान है। मृग की नाभि में कस्तूरी की तरह–

कस्तूरी कुंडल बसै मृग ढूँढै वन माँहिं,
ऐसे घट-घट राम हैं, दुनिया देखे नाहिं।

कबीर को ऐसे कृत्यों को देखकर आश्चर्य होता है, जो जीव-हिंसा तक को धर्म कहते हैं। यदि हिंसा ही धर्म है तो अधर्म क्या है? कबीर का कथन है–

जीव बधत अरु धर्म कहत हो, अधरम कहाँ है भाई।
आपन तो मुनि जन हैं बैठे कासन कहौं कसाई।

कबीर का धर्म प्रेम का धर्म है। कबीर का दर्शन मानवता का दर्शन है। कबीर की विचारधारा ममत्व से परिपूर्ण है। वहाँ पोथी-ज्ञान व्यर्थ है। प्रेम का झर-झर झरता झरना उनके विचारों के बीच प्रवाहित है। वे तो प्रेम के आखर को ही सब-कुछ मानते हैं। इसलिए तो कबीर ने कहा–

पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय,
ढाई आखर प्रेम का पढ़ै सो पंडित होय।

जो साधक संपूर्ण जीवों के प्रति आत्मीय एकता स्थापित कर लेता है, वही सब प्रकार के आनंद पाता है। मुक्तानंद अवस्था का आनंद उसे ही प्राप्त होता है। उस अवस्था का वर्णन नहीं किया जा सकता। कबीर की वाणी में–

अकथ कहांणी प्रेम की, कछू कही न जाई,
गूँगे केरी सर करा, बैठे ही मुसकाई।

ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया

कबीर ने स्वीकार किया है : जो पहिरा सो फाकिसी, नाम धरा सो जाइ।' इसी प्रकार आत्मा भी शरीर रूपी जो चोला पहनती है, वह भी समय आने पर पंचतत्त्व में विलीन हो जाता है।

कबीर ने अनुमान किया कि उनका अवसान-काल समीप है। अब इस शरीर को त्यागना

होगा। आत्मा को परमात्मा में लीन करने का समय आ गया था।

वे काशी में थे। काशी मोक्ष की नगरी है। मृत्यु के समय हर व्यक्ति काशीवास की कामना करता है, किंतु कबीर तो क्रांतिकारी थे। उन्होंने घोषणा की, 'वे अब मगहर में जाकर रहेंगे।'

मगहर के विषय में यह अंधविश्वास प्रचलित था कि वहाँ पर मरने पर मुक्ति नहीं मिलती। कबीर तो जीवन-भर अंधविश्वास के विरुद्ध संघर्ष करते रहे थे। मगहर के इस कलंक को धोना आवश्यक था। अंधविश्वास का विरोध आवश्यक था।

इस घोषणा से कबीर के शिष्यों को बड़ा कष्ट हुआ। कबीर ने उन्हें समझाया–

लोगा तुम हौ मति के भोरा।
जउ कासी तनु तजहि कबीरा तौ रामहि कौन निहोरा।
जो जन भाउ भगति कदु जानैं ताकौ अचरजु काहो,
जैसें जल जलहीं ढुरि मिलियौ त्यौं ढुरि मिल्यौ जुलाहो।
कहे कबीर सुनहु रे लोगों मरमि न भूलौ कोई,
क्या कासी क्या मगहर ऊखर हृदै राम जो होई।

कबीर को विश्वास था कि मोक्ष के लिए स्थान नहीं, कर्म ही प्रधान होते हैं। भावभक्ति के भरोसे वे मगहर में प्राण छोड़ने पर भी अपने राम में इस प्रकार घुल-मिल गए जैसे पानी में पानी मिल जाता है।

जिसके हृदय में राम का वास है, उसके लिए काशी और मगहर में कोई भी तो अंतर नहीं। अगर काशी में मृत्यु होने पर ही मोक्ष मिलता है तो फिर राम की कौनसी बढ़ाई समझी जाए।

आख़िर कबीर मगहर पहुँच गए। वहाँ पहुँचने पर उनके भक्तों का एक मेला-सा लग गया। हर कोई उनके दर्शन की साध लेकर आता था। अंतिम दिवस उन्होंने सबको एकत्र किया। कबीर ने सबकी ओर देखा। सबने कबीर की आँखों में झलकते प्रकाश का अनुभव किया। तभी उनका एक भक्त गा उठा–

झीनी झीनी बीनी चदरिया
काहै के ताना, काहे के भरनी, कौन तार से बीनी चदरिया
साँई को सियत मास दस लागे, ठोक-ठोक के बीनी चदरिया
सो चादर सुर-नर मुनि ओढ़े, ओढ़ि के मैली कीनी चदरिया
दास कबीर जतन से ओढ़ी, ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया।

लोगों ने देखा कि एक ज्योति कबीर के शरीर से बाहर आई और आसमान की ओर चली गई। उपस्थित जनसमुदाय को विश्वास हो गया कि कबीर का महाप्रयाण हो गया है।

कबीर ने जीवन-भर अंधविश्वासों का विरोध किया। उन्होंने एकता, मित्रता, सहिष्णुता, आत्मीयता का उपदेश दिया, किंतु उनकी मृत्यु का समाचार मिलते ही एक विवाद छिड़ गया।

काशीनरेश वीरसिंह और उनके हिंदूभक्त चाहते थे कि कबीर का अंतिम संस्कार अग्नि में जलाकर हिंदू-पद्धति से किया जाए। दूसरी ओर मुस्लिम अनुयायियों की कामना थी कि उनका संस्कार मुस्लिम मजहब के अनुसार दफ़नाकर होना चाहिए।

बात इतनी बढ़ी कि दोनों ओर से तलवारें खिंच गईं।

तभी एक आकाशवाणी हुई : 'व्यर्थ में एक-दूसरे के रक्त के प्यासे हो रहे हो। जाओ, कुटी का दरवाज़ा खोलकर देखो।'

लोगों ने जब कुटिया का द्वार खोला तो वे आश्चर्यचकित रह गए। वहाँ कबीर का शव नहीं था। उसके स्थान पर फूलों का एक छोटा-सा ढेर पड़ा था।

दोनों संप्रदायों के भक्तों ने अपनी-अपनी आस्था के अनुसार कबीर का अंतिम संस्कार किया।

कबीर समर्पण की सही पहचान हैं।

अहंकार से लाखों कोस दूर।

समर्पण की भावदशा यह है कि जो भी दुर्गुण हैं वे मेरे हैं, जो भी सद्गुण हैं, वे तेरे हैं।

अब तो सब छोड़ रहा हूँ। दुर्गुण, सद्गुण सब तेरे चरणों में अर्पित कर रहा हूँ। यही जीवन का रहस्य है।

जिस दिन कोई व्यक्ति परमात्मा में इस प्रकार समर्पित हो जाता है तो वह कबीर बन जाता है। एक ऐसा कबीर, जो कहता है :

मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर,
तेरा तुझको सौंपते, क्या लागत है मोर।

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल

समीक्षा समिति

प्रो॰ हरिमोहन, कुलपति, जे॰एस॰विश्वविद्यालय, शिकोहाबाद (फिरोजाबाद) उ॰प्र॰

प्रो॰ खेमसिंह डहेरिया, कुलपति, अटलबिहारी वाजपेयी हिंदी विश्वविद्यालय, भोपाल (म॰प्र॰)

प्रो॰ आदित्य प्रचंडिया, पूर्व प्रोफेसर हिंदी विभाग, दयालबाग एजुकेशनल इंस्टीट्यूट, दयालबाग, आगरा (उ॰प्र॰)

प्रो॰ नंदकुमार पांडेय, हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज॰)

प्रो॰ हरिमोहन बुधौलिया, पूर्व अध्यक्ष हिंदी विभाग, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म॰प्र॰)

प्रो॰ शंभुनाथ तिवारी, हिंदी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (उ॰प्र॰)

प्रो॰ चंद्रकांत मिसाल, अध्यक्ष हिंदी विभाग, एस॰एन॰डी॰टी॰ महिला विद्यापीठ, पुणे (महा॰)

डॉ॰ संजीवकुमार, लेखक एवं साहित्यकार, नोएडा (उ॰प्र॰)

डॉ॰ शशिप्रभा, अध्यक्ष हिंदी विभाग, वर्धमान कॉलेज, बिजनौर (उ॰प्र॰)

समीक्षा समिति

प्रो॰ हरिमोहन, कुलपति, जे॰एस॰विश्वविद्यालय, शिकोहाबाद (फिरोजाबाद) उ॰प्र॰
प्रो॰ खेमसिंह डहेरिया, कुलपति, अटलबिहारी वाजपेयी हिंदी विश्वविद्यालय, भोपाल (म॰प्र॰)
प्रो॰ आदित्य प्रचंडिया, पूर्व प्रोफेसर हिंदी विभाग, दयालबाग एजुकेशनल इंस्टीट्यूट, दयालबाग, आगरा (उ॰प्र॰)
प्रो॰ नंदकुमार पांडेय, हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज॰)
प्रो॰ हरिमोहन बुधौलिया, पूर्व अध्यक्ष हिंदी विभाग, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म॰प्र॰)
प्रो॰ शंभुनाथ तिवारी, हिंदी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (उ॰प्र॰)
प्रो॰ चंद्रकांत मिसाल, अध्यक्ष हिंदी विभाग, एस॰एन॰डी॰टी॰ महिला विद्यापीठ, पुणे (महा॰)
डॉ॰ संजीवकुमार, लेखक एवं साहित्यकार, नोएडा (उ॰प्र॰)
डॉ॰ शशिप्रभा, अध्यक्ष हिंदी विभाग, वर्धमान कॉलेज, बिजनौर (उ॰प्र॰)

 ISSN 0975-735X

अनुक्रम

आदिवासी बलिका शिक्षा में आने वाली चुनौतियाँ/
अनुज कुमार पांडेय, डॉ॰ देवीप्रसाद सिंह 21
कानपुर की राजनीतिक हलचल में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की गतिविधियों का
समीक्षात्मक अध्ययन/ **अभिषेक सचान, डॉ॰ आर॰ के॰ बिजेता** 27
याज्ञवल्क्य स्मृति में वर्णित आर्थिक सिद्धांत/ **अंजली गुप्ता** 31
सोशल मीडिया का युवाओं पर प्रभाव/
दीपक कुमार कन्नौजिया, डॉ॰ पारिजात प्रधान 37
जी-20 समूह और भारत की अध्यक्षता/ **डॉ॰ गीता दुबे** 43
आदिवासी जीवन संघर्ष का कड़वा सच : बस्तर-बस्तर/
डॉ॰ कुलदीपसिंह मीना 47
शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाले उपभोक्ताओं के उपभोक्ता व्यवहार का
तुलनात्मक अध्ययन/ **सौम्या परौहा एवं स्वाति जैन** 52
कोरोनाकाल में ऑनलाइन शिक्षण के प्रति बी॰एड्॰ में अध्ययनरत छात्र-
अध्यापकों एवं छात्र-अध्यापिकाओं के समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन/
डॉ॰ अंकुर शर्मा 55
लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के विचारों की वर्तमान में प्रासंगिकता/
डॉ॰ भावना यादव 59
हस्तिनापुर पुरातात्त्विक स्थल का प्रबंधन एवं चुनौतियाँ/
प्रो॰ देवेन्द्रकुमार गुप्ता, दीपककुमार 64
भारत में पंचायतीराज व्यवस्था की यात्रा : एक ऐतिहासिक अवलोकन 71
डॉ॰ धीरजसिंह खाती 71
भारत श्रीलंका संबंधों में आर्थिक सहयोग/ **दिलीपकुमार, डॉ॰ स्वाती ठाकुर** 78
किशोरों के आत्मविश्वास पर लिंग एवं सामाजिक-आर्थिक स्थिति के प्रभावों
का तुलनात्मक अध्ययन/ **दिनेशचंद्र पांडे, प्रो॰ दीपा वर्मा** 84
21वीं शताब्दी में जलवायु परिवर्तन के कारण बलदता कृषि प्रतिरूप
(राजस्थान के संदर्भ में)/ **गजेन्द्र सिंह राठौड़, डॉ॰ सुनील कुमार** 90
1857 के संग्राम के में फर्रुखाबाद जिले की भूमिका : एक विश्लेषणात्मक
अध्ययन/ **गौरव सक्सेना, डॉ॰ चित्रा आम्रवंशी** 96
विद्यार्थियों के अवधान में योगाभ्यास की उपादेयता/
डॉ॰ वंदना सिंह, मीना पांडेय 102
भारतीय दर्शन में ज्ञान-मीमांसा : एक विमर्श/ **डॉ॰ मृगांक मलासी** 107

नेपाल में चीन का बढ़ता प्रभाव एवं भारतीय हितों को चुनौती/
डॉ॰ शिखा श्रीवास्तव, मुकेशकुमार प्रजापति 114
मान्यवर काशीराम जी के आर्थिक विचार/ **पुष्पेन्द्रकुमार, प्रो॰ एʼवी॰ कौर** 123
दलित-विमर्श की अवधारणा/ **राजमणि सरोज** 130
भारतीय पुरातत्त्व और संस्कृति का समन्वय/ **राजसिंह, प्रो॰ अजय विजय कौर** 134
संविधान संशोधन की प्रक्रिया का तुलनात्मक अध्ययन (भारत, अमेरिका, स्विट्जरलैंड, ब्रिटेन के विशेष संदर्भ में)/
डॉ॰ राजेशकुमार साहू, डॉ॰ रामनिवास पटेल 139
स्त्री-शिक्षा के संबंध में डॉ॰ भीमराव अंबेडकर के योगदान का संक्षिप्त अध्ययन/
डॉ॰ रामचंद्र सिंह 148
उत्तरकाशी जनपद के सीमांत क्षेत्र 'बंगाण' के मुख्य लोकदेवता 'पबासिक' (पवासी) महासू/ **प्रो॰ प्रभातकुमार, रणवीर सिंह** 152
ललितकला में संगीत का स्थान एवं मानव-जीवन के साथ संगीत का संबंध/
डॉ॰ रविन्द्र कुमार 158
जलवायु परिवर्तन एवं बदलती कृषि की चुनौतियाँ : पूर्वी उत्तर-प्रदेश का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन/ **ऋतु रानी, डॉ॰ पारिजात प्रधान** 166
शैक्षिक व व्यावसायिक पाठ्यक्रम में अध्ययनरत ग्रामीण एवं शहरी छात्राओं की व्यक्तिगत समस्याओं का अध्ययन/ **डॉ॰ रेणु सिंह** 171
तिलक का राष्ट्रीय योगदान/ **डॉ॰ विकासरंजन कुमार** 175
शिक्षण-अधिगम प्रकिया में बहुमाध्यम उपागम की प्रभावशीलता का समीक्षात्मक अध्ययन/ **अनिता पांडेय, डॉ॰ वंदना सिंह** 179
अफगानिस्तान में सत्ता-परिवर्तन : भारतीय सुरक्षा पर प्रभाव/ **डॉ॰ दीपक** 185
उत्तराखंड में पलायन, ग्रामीण विकास और महिला उद्यमिता: एक विवरणात्मक अध्ययन/ **डॉ॰ ललितमोहन पंत, विकास जोशी, डॉ॰ आशीष टम्टा** 192
महर्षि अरविंद घोष के शिक्षादर्शन एवं समसामयिक प्रासंगिकता का अध्ययन/
मोनिका, डॉ॰ यशवंती गौड़ 200
गांधी जी का 'स्वदेशी' प्रतिमान एवं आर्थिक विकास/ **डॉ॰ मनोज सिंह यादव** 205
महर्षि पतंजलि का व्यक्तित्व एवं कृतित्व/
मनोज कुमार सकलानी, डॉ॰ हलधर यादव 209
लोकतंत्र में जनता की भागीदारी/ **डॉ॰ संगीता कुमारी** 214
ऑनलाइन कक्षाओं का छात्रों के जीवन पर प्रभाव/ **डॉ॰ राजू सीताराम पवार** 219
भारतीय स्वाधीनता संग्राम में छत्तीसगढ़ की भूमिका/
मिथिलेश साहू, डॉ॰ योगेंद्रकुमार धुर्वे 222
भारत में नगरीय ठोस अपशिष्ट प्रबंधन की स्थिति : एक समीक्षा 228
डॉ॰ हरीश चंद्र जोशी, डॉ॰ शालिनी चौधरी, डॉ॰ कृष्णकुमार टम्टा
डॉ॰ बीना तिवारी 'फुलारा' 228

 ISSN 0975-735X